- तीसरा अध्याय -

'पोस्टर' नाटक में चित्रित संघर्ष

तीसरा अध्याय

"पोस्टर" नाटक में चित्रित संघर्ष

३.१ संघर्ष :

मनुष्य मूलत: संघर्षशील प्राणी है। संघर्ष, उसकी स्थायी प्रवृत्ति रही है। अपनी इच्छित प्राप्ति के लिए वह प्रतिकूल परिस्थिति में संघर्ष करता रहता है, कभी प्रकृति से, कभी विषम परिस्थितियों से ; कभी अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए ; तो कभी अपने मन की अनिश्चयात्मक स्थिति से। इसीकरण मानवी जीवन एवं व्यवहार में संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

नाटक मानवी जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति होने से नाटक में मानवी जीवन का संघर्ष अंतर्भूत रहता है। संघर्ष से नाटक में रोचकता, स्वाभाविकता, यथार्थता निर्माण होती है। संघर्ष के बिना नाटक नाट्य हीन बन जाता है। अत: विभिन्न नाट्यशास्त्रियों ने नाटक में संघर्ष तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

नाटक की कथा चाहे ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक सामाजिक आदि किसी भी प्रकार की हो, उसमें संघर्ष की नितांत आवश्यकता रहती है। इस संदर्भ में विल्यम हडसन का कहना है, " ..... प्रत्येक नाटकीय कथानक का आविर्भाव किसी संघर्ष से होता है, जो कि विरोधी व्यक्तियों, अथवा भावों अथवा हितों की टक्कर से छिडता है। ..... संघर्ष किसी भी प्रकार का क्यों न हो, नाटकीय कथानक के लिए वह एक आधारभूत तत्व है। संघर्ष के आरम्भ से वास्तविक कथानक का आरम्भ होता है और उसकी समाप्ति के साथ ही वास्तविक कथानक की समाप्ति होती है।"[१]

स्पष्ट है, कि संघर्ष नाटक में जान डालता है। वह नाटक का प्राणतत्व है। नाटक में संघर्ष की निर्मिति में नाटक के पात्र एवं घटनाएँ क्रियाशील रहती हैं, और इसी संघर्ष में नाटकीय कथावस्तु का विकास होता है। अत: नाटकीय कथावस्तु एवं पात्रों के साथ संघर्ष का घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। पात्रों के चरित्रोद्घाटन में संघर्ष एक प्रभावी माध्यम बन जाता है। इससे नाटक का कथ्य अत्यधिक प्रभावशाली बन जाता है। इसीतरह नाटक के संवाद और भाषाशैली पर भी संघर्ष तत्व का गहरा प्रभाव पडता है। नाटक में संघर्ष के कारण भावात्मक संवेग तीव्र बन जाते हैं। मानवी मन की उद्विग्नता, बेचैनी, क्षोभ आदि विभिन्न भाव प्रकट करते समय नाटकीय संवाद कभी छोटे तो कभी लम्बे हो जाते हैं, जिससे नाटकीय भाषा का रूप पात्रों की भावात्मक स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। इसप्रकार कहा जा सकता है, कि संघर्ष नाटक का आधारभूत तत्व है।

नाटक में संघर्ष दो प्रकार से विद्यमान रहता है -

१) बाह्य संघर्ष २) आंतरिक संघर्ष।

बाह्य संघर्ष व्यक्ति-व्यक्ति में, व्यक्ति-समुदाय में, समुदाय-समुदाय में व्यक्ति-प्रकृति में एवं व्यक्ति-नियति में छिडता रहता है। यह संघर्ष दृश्य रहता है, अत: वह स्थूल है, किंतु आंतरिक संघर्ष अधिक सूक्ष्म होता है। वह व्यक्ति के मन की अतल गहराईयों को खोल देता है। व्यक्ति के मन में उठनेवाले विविध भाव, जैसे-प्रेम, क्रोध, घृणा, वितृष्णा भावुकता तथा मस्तिष्क में चलनेवाले तर्क-वितर्क, वैचारिक प्रक्रिया को लेकर आंतरिक संघर्ष चलता रहता है। आंतरिक संघर्ष व्यक्ति का भीतरी संघर्ष है, जो सूक्ष्म एवं अदृश्य रहता है जो केवल संवेदय होता है। अत: हर समय मनुष्य में संघर्ष की चेतना बनी रहती है। बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष ही नाटक को प्रभावशाली बना देता है, उसका मूल्य बढाता है।

स्वतंत्रता पूर्व काल में अंग्रेजों की अर्थनीति एवं शोषण-नीति ने जमींदारी अर्थव्यवस्था को निर्माण कर पूँजीवादी वर्ग को बढावा दिया। परिणामस्वरूप, प्रसादोत्तर काल में आर्थिक-सामाजिक विषमता से सम्बद्ध नाटक लिखे गये, जिनमें वर्गसंघर्ष को प्रधानता दी गयी। जैसे शोषक-शोषित संघर्ष, शोषक-किसान संघर्ष आदि। इस समय साम्यवाद समाजवाद तथा म. गांधी के ग्रामोद्धार सम्बन्धी सिद्धांतो का प्रभाव भी आधुनिक हिंदी नाटककारों पर रहा। समाज में स्थित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की प्रतिष्ठापना हेतु, संघर्ष प्रधान नाटक लिखे गए, जिनमें शोषक शोषित संघर्ष को उजागर किया गया।

३.२ "पोस्टर" नाटक का संघर्ष :

ये नाटक यथार्थ के धरातल पर सामाजिक-आर्थिक संघर्ष को प्रस्तुत करते हैं, जो व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समुदाय, समुदाय-समुदाय के बीच चलता रहता है। डा. शंकर शेष का "पोस्टर" भी आदिवासी प्रांत के शोषक-शोषित वर्ग-संघर्ष को मार्मिकता से प्रस्तुत करता है, जिसकी अभिव्यक्ति अनूठी बन पडी है। यह संघर्ष आदिवासी परिवेश को मूर्त करता है। डा. शेष, अनुसंधान अधिकारीके रूप में कार्य करते हुए आदिवासी परिवेश के बस्तर, नारायणपुर जिले के मजदूरों की शोषित अवस्था देख चुके थे। अज्ञान एवं अशिक्षा के कारण उत्पन्न दैन्य एवं शोषक वर्ग की निर्मम तानाशाही वे अपनी आँखो से देख चुके थे। "पोस्टर" का संघर्ष आदिवासी परिवेश के इसी दाहक वास्तव को प्रस्तुत करता है। वह आदिवासी जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है। अत: यह संघर्ष यदयपि वर्गीय संघर्ष रहा है, फिर भी वह आदिवासी परिवेश की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में नाटक में प्रस्तुत है, किसी विचारधारा-धीन अथवा किसी सिद्धान्त प्रतिपादन हेतु नहीं।

इस दृष्टि से "पोस्टर" नाटक का संघर्ष सर्वथा मौलिक सिद्ध होता है।

डा. शंकर शेष के "पोस्टर" नाटक में आदिवासीयों का संघर्षशील जीवन अपने वास्तव रूप में प्रस्तुत हुआ है। यह संघर्ष स्वाभाविकत: आदिवासी परिवेश को मूर्त करता है, जिसमें आदिवासीयों के संघर्षशील जीवन के विभिन्न रूप प्रकाशित हुए हैं, जैसे - मालिक - मजदूर संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, स्त्री-पुरुष संघर्ष आदि। यह संघर्ष आदिवासी जीवन का यथार्थ है, और उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही यथार्थ दृष्टि से हुअी है।

३.२.१ मालिक - मजदूर संघर्ष :

डा. शंकर शेष का "पोस्टर" एक सामाजिक नाटक है। इसमें आदिवासी जनजीवन के शोषण को मुख्य रूप से अभिव्यक्ति मिली है, जो वर्तमान आदिवासी जीवन को भी मूर्त करती है। शोषण परम्परा वर्गव्यवस्था का मूल कारण रही है। इसी शोषणनीति ने भारतीय समाज-व्यवस्था में विषमता की दरारें पैदा की है। उँच-नीच, अमीर-गरीब, श्रमिक-पूँजीपति जैसे विषम वर्गों को बढावा दिया है। इसप्रकार की विषम समाजव्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था के मूल में शोषण ही कारण रहा है। चाहे वह शोषण सर्वहारा वर्ग के सामाजिक अधिकारों का हो, सुरक्षा का हो, आर्थिक स्तर का हो, शारीरिक मानसिक स्तर का हो, यह तो युग-युग से चलता आया है, जिसने वर्ग संघर्ष को अनिवार्यत: जनम् दिया है।

"पोस्टर" में यह वर्गसंघर्ष मूलत: मालिक-मजदूर वर्ग में चलता रहता है, जिसे डा.शेष ने परिस्थिति सापेक्षता में प्रस्तुत किया है। नाटक के आरंभ में ही, इस विषम वर्गव्यवस्था के दर्शन होते हैं, जैसे,

" ..... लोग वहाँ पर रहते थे
जीवन का दु:ख सहते थे
मालिक जैसा कहता था
वैसा ही वे करते थे
वहाँ न थोडा कुछ भी बदला
धरमराज का दाँव था ..."[२]

यह आदिवासी गाँव सभ्यता की रोशनी से बहुत दूर जंगली परिवेश में बसा हुआ है। छोटेलाल पटेल इस गाँव का सर्वेसर्वा है। बहुत साल पहले छोटेलाल के पूर्वज धन्नालाल यहाँ आकर बसे हुए थे, जिसने अपनी संस्कृति निर्माण की थी। केवल एक दोना चिरौंजी के लिए एक दोना नमक देकर आदिवासीयों की अस्मिता को खरीद लिया था। छोटेलाल पटेल यही परम्परा आगे जारी रखता है। केवल एक रुपिया मजदूरी पर आदिवासी मजदूरों की श्रमशक्ति को, उनको स्वत्व को खरीद लिया जाता है, जिसमें दो वक्त की रोटी एवं लज्जा रक्षण के लिए आवश्यक वस्त्र तक मुनासिब नहीं होते।

आदिवासी कथा की नायिका चैती सर्वप्रथम इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है। वह अपने मायके से "पोस्टर" नुमा रंगीन कागज उठा लाती है, जिसपर मजदूर युनियन के नेता राघोबा की तस्वीर छपी हुअी है, और पूँजीवादी शोषक वर्ग के लिए डरावनी चेतावनी भी दी है। चैती राघोबा के कारनामों से परिचित है। वह जानती है, कि किसप्रकार राघोबा के आदमियों ने इसी इलाके के किसी दूसरे पटेल का कत्ल किया है। राघोबा के प्रयत्न से ही वहाँ मजदूरो को प्रतिदिन चार रुपिये मजदूरी मिलती है, यहाँ तक कि राघोबा के उपदेश से वहाँ के मजदूरों ने शराब पीना भी छोड दिया है। चैती ये सभी बातें कल्लु से तथा अन्य मजदूरों को बताकर उनमें पटेल के खिलाफ, शोषण के खिलाफ

संघर्ष की चेतना जगाने का प्रयास करती है।

चैती का यह प्रयास खाली नहीं जाता। हँसी-मजाक में चिपकाया हुआ "पोस्टर" नुमा कागज पटेल को बेचैन एवं अस्वस्थ कर देता है, जिससे मजदूरों को वास्तव स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वे जान जाते हैं, कि पटेल भी "राघोबा" जैसे युनियन के नेता से डरता है। उसे डराया जा सकता है। उससे रोजाना चार रूपिये मजदूरी की माँग की जा सकती है। यहाँ "पोस्टर" मजदूरो की संघशक्ती का तथा मूक विरोध का प्रतीक बन जाता है। वे "पोस्टर" के द्वारा अपना संघर्ष जारी रखते हैं। संघर्ष के प्रथम प्रयास में ही उनकी मजदूरी पचींस पैसे से बढाई जाती है, जिससे मजदूरों में आत्मविश्वास की भावना निर्माण होती है। मजदूर अपना संघर्ष जारी रखते हैं। दूसरी बार भी उनकी मजदूरी पचीस पैसों से बढाई जाती है। यह मजदूर वर्ग के संघर्ष शक्ति का असर था, जिसके सामने पटेल जैसा सर्वेसर्वा भी हार जाता है। इस मजदूर वर्ग की संघर्षशक्ति से वह अंदर ही अंदर सहम जाता है। यही कारण है, कि वह मजदूरों की मजदूरी एक रूपिये से डेढ रूपिये तक बढा देता है।

नाटक में यह संघर्ष उस वक्त चरमसीमा पर पहुँच जाता है, जब पटेल इस संघर्ष को तोडने के लिए कल्लु को मुकादम पद तथा चैती को हवेली की नौकरी का लालच दिखाता है, किंतु कल्लु और चैती पटेल के इस शोषण का विरोध करते हैं। पटेल जब सबके सामने चैती का हाथ पकडकर उसे घसीटकर ले जाने की कोशिश करता है। मजदूर - ३ इस बेइज्जती को सहन नहीं कर पाता और लपककर, झट से पटेल की गर्दन पकड लेता है। मौके का फायदा उठाकर कल्लु, जो अभीतक पटेल के कोडे खा रहा था, उसके हाथ से छीनकर, पटेल की पिटाई करता है, जिसमें अन्य मजदूर भी पटेल के खिलाफ कल्लु का साथ देते हैं। यहाँ मालिक-मजदूर

संघर्ष की चरम परिणती है, जहाँ मजदूर वर्ग के न्याय की गुंजाईश की संभावना रहती है किंतु आपस की फूट के कारण यह संघर्ष कटु यथार्थ में परिवर्तीत हो जाता है। सुखलाल जो खुद आदिवासी ही है, पुलिस बुलवाकर पटेल को पीटने के इल्जाम में सभी मजदूरों को जेल भिजवाता है और चैती बाद में हवेली पहुँचा दी जाती है। यहाँ संघर्ष चरमसीमा पर आकर भी सुविधा एवं सत्ता मोह के कारण अस्मिता के अभाव के कारण टूट जाता है। यह वर्तमान भारत का कटु यथार्थ है, जिसे डा. शेष ने परिस्थिति सापेक्षता में प्रस्तुत किया है। आज तक यही होता आया है। जिस संघर्ष को चैती और कल्लु ने जारी रखा था, अन्य मजदूरों में संघर्ष की चेतना को जीवंत रखा था, उसे बीच में ही छोड देना उचित नहीं है, क्योंकि, "-- बिच्छु डंक मारना छोड सकता है, विषधर फुंकारना त्याग सकता है लेकिन दोपाया मनुष्य जैसा भुजंग कभी डसना नहीं छोड सकता। मोह के क्षण में पडकर उसे छोडना अपने विनाश को आमंत्रित करना है। ----- जैसे बूंद-बूंद से घडा भरता है उसी प्रकार एक-एक व्यक्ति से कारवाँ और कारवाँ जन-समुद्र बनता है। अत: संघर्ष जल की तरह प्रवाहित रहे - एक-न-एक दिन विजयश्री मनुष्यता के गले में ही पडेगी।"[3] व्यक्ति को अपना संघर्ष अंतिम सोपान तक जारी रखना चाहिए तभी वह उसमें सफल हो सकता है।

नाटक के अंत में सभी मजदूरों को जेल होती है, चैती भी बाद में हवेली पहुँचा दी जाती है। इस संघर्ष में पटेल को सजा नहीं होती। मजदूरों को पूरी तरह से न्याय नहीं मिल पाता। इस आधार पर उनके संघर्ष को अधूरा कहा जा सकता है, किंतु असफल नहीं क्योंकि कुछ सीमा तक वे इस संघर्ष में कामयाब हो जाते हैं। उनकी मजदूरी एक रूपिये से डेढ रूपिये तक बढ जाती है। जिस पटेल की दासता में वे अभीतक जी रहे थे; अन्याय, गुलामी, शोषण का उन्हें एहसास तक नहीं था; वे अपने अधिकार, स्वतंत्रता, सुरक्षा के प्रति जाग्रत हो जाते हैं। पटेल

से विरोध करते हैं। पोस्टर के व्दारा अपना संघर्ष जारी रखते हैं, यह भी कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। अंत में पटेल व्दारा चैती का हाथ पकडने पर मजदूर-३ का पटेल की गर्दन पकडकर उसका हाथ रोकना, कल्लुव्दारा पटेल को कोडों से पिटवाना एवं उसमें सभी मजदूरों का साथ देना यह संघर्ष की सफलता ही है। अंत में नाटककार कीर्तनकार के व्दारा कहता भी है, " ---- लेकिन वहाँ गाँव के लोगों ने किसी का मुंह नहीं ताका--- वे खुद ही लडकर अपनी जडता से बाहर आये। क्या इतना काफी नहीं है ?"[४] यहाँ डा.शेषजी ने इस संघर्ष को उसी स्थिति तक विकसित किया है, जहाँ तक वह आगे बढ सकता है। लेखक यहाँ आदर्शवादी परिणाम की ओर नहीं ले जाता, बल्कि वह तो वास्तवता को सूचित करता है। अत: इस संघर्ष का अंत परिस्थिती सापेक्षता में प्रस्तुत है और वह वास्तव स्थिति का सूचक है। युवक के सवाल का जवाब देते हुए कीर्तनकार कहता है, "कल्लु जीता या हारा यह अपने मन से पूछो। अगर वह हारा होता तो उसका कीर्तन नहीं गाता मैं।-------- मुसीबत तो यह है कि कोई झंझट में पडना ही नहीं चाहता।"[५] संघर्ष की सम्पूर्ण सफलता के लिए हर व्यक्ति को संघर्ष की जिम्मेदारी खुद लेनी चाहिए। कामयाबी के अंतिम सोपान तक हमेशा सक्रीय रहना चाहिए, किंतु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए तो सक्रीय रहता है, किंतु दूसरे की व्यक्तिगत समस्या के समय निजी मामला कहकर लीक से हट जाता है।

अत: कहा जा सकता है, कि प्रस्तुत नाटक में मालिक-मजदूर संघर्ष परिस्थिति सापेक्षता में एवं वास्तव स्थिति में प्रस्तुत हुआ है। आदिवासी परिवेश में संघर्ष की चेतना जितनी विकसित हो सकती थी, उसी सीमा तक नाटककार ने उसे प्रस्तुत किया है और उसकी अंतिम सफलता का मार्ग भी सूचित किया है।

३.२.२ शोषक-शोषित संघर्ष :

'पोस्टर' के मालिक-मजदूर संघर्ष में ही शोषक-शोषित संघर्ष का स्वरूप दिखाई देता है। इस संघर्ष का मूलाधार वर्गसंघर्ष है, जो पटेल जैसे पूँजीवादी-वर्ग एवं आदिवासी मजदूर-वर्ग में चलता रहता है। उन्नीसवीं सदी के बाद इस वर्ग संघर्ष को लेकर हिंदी साहित्य में कुछ नाटक लिखे गए, जिनमें कार्ल मार्क्स के साम्यवादी सिध्दांतो का प्रस्फुटन तत्कालीन परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। जैसे - डा.गोविंददास का "हिंसा-अहिंसा", हरिकृष्ण प्रेमी का "बंधन", डा. लक्ष्मीनारायण लाल का "रक्तकमल", शील का 'किसान' आदि नाटक आते हैं, जिनमें पूँजीवादी शोषक-सत्ता के खिलाफ शोषित किसान-वर्ग का संघर्ष अभिव्यक्त है।

इस साम्यवादी विचारधारा का उदय उन्नीसवीं सदी में क्रांतिकारी विचारक कार्ल मार्क्स के चिंतन से हुआ, जिसे मार्क्सवाद भी कहा जाता है। यह मार्क्सवाद अंग्रेजी के "मार्क्सिजम" का हिंदी पर्यायवाची शब्द है। यह वैज्ञानिक दृष्टि को लेकर चलनेवाली दर्शनप्रधान विचारधारा है, जिसमें पूँजीवादी-शोषण-सत्ता का विरोध, मजदूर-शोषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक-आर्थिक समता का प्रतिपादन मिलता है। इस मार्क्सवादी विचारधारा का मूलाधार हीगेल का द्वंद्ववाद रहा है, जिसके अनुसार सृष्टि का हर कार्यव्यापार परस्पर विरोधी क्रियाओं में होता रहता है, जिनमें अंतर्विरोध के तत्व बने रहते हैं, इसीसे आगे चलकर संघर्ष की निर्मिति तथा उसका विकास होता है। हीगेल के इस द्वंद्ववाद को मार्क्स ने आधुनिक वैज्ञानिक रूप दिया।

१९१७ में हुई रूसी क्रांति ने वैश्विक स्तर पर अपना प्रभाव जमा दिया। भारतीय राजनीति पर भी इसका गहरा असर हुआ। इस क्रांति की सफलता ने एक ओर भारतीय शोषित वर्ग में मुक्ति की नयी

आस जगा दी, तो दूसरी ओर शोषक वर्ग एवं सत्तापिपासु अंग्रेजों को चेतावनी भी दी। इसी क्रांति के परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति में समाजवादी "कॉंग्रेस पार्टी" का उदय हुआ, जिसने सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व किया। रूसी क्रांति से प्रभावित भारतीय राजनीति की विचारधारा का प्रवाह भारतीय साहित्यविधाओं में प्रतिबिम्बित होने लगा। इस साम्यवादी साहित्य का प्रधान उद्देश्य वर्गविरहित समाज व्यवस्था की स्थापना तथा शोषक वर्ग का दमन रहा है। इ.स.१९३६ में भारत में प्रेमचंदजी की अध्यक्षता में "प्रगतिशील लेखकसंघ" की स्थापना इसी मार्क्सवादी विचारधारा का असर है।

डा. शंकर शेष का "पोस्टर" नाटक भी आदिवासी प्रांत के शोषक-शोषित संघर्ष को लेकर चलता है, जिसमें पूँजीपति वर्ग व्दारा आदिवासी सर्वहारा वर्ग का निर्मम शोषण यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत है। यह शोषण कई स्तरों पर चलता है - आर्थिक शोषण, श्रमशोषण, शारीरिक शोषण, अधिकार शोषण आदि उसके कई रूप हैं। इस शोषण संघर्ष में पूँजीवादी वर्ग की निर्मम तानाशाही, कूट शोषणनीति, सर्वहारा वर्ग की दयनीयता, रूढीवादिता, पूँजीवादिता का विरोध तथा आर्थिक समता एवं स्वायत्त अधिकार प्राप्ति के लिए मजदूरों में संघर्ष की स्वाभाविक चेतना के दर्शन होते हैं। इस आधार पर कुछ लेखक, समीक्षक इस नाटक पर साम्यवादी प्रभाव अनुभव करते हैं। डा. सुनीलकुमार लवटे तथा डा. प्रकाश जाधव के मतानुसार "नाटक की संपूर्ण कथा पर साम्यवादी प्रभाव है, जो विषयानुकूल है।"[६] डा. हसमनीसजी भी इस कथा पर साम्यवादी प्रभाव अनुभव करते है।"[७] वस्तुत: "पोस्टर" की निर्मिति के समय की पृष्ठभूमि देखी जाय तो उपरोक्त मत वास्तव स्थिति से अलग पडते हैं, क्योंकि "पोस्टर" की निर्मिति किसी भी प्रकार की विचारधारा के प्रभाव स्वरूप नहीं हुअी है। "पोस्टर" की निर्मिति के पीछे नाटककार का स्वानुभव, आदिवासी प्रदेश की वास्तव स्थिति कारणभूत रही है।

इस संदर्भ में श्रीमति सुधा शोषजी का कथन दृष्ट व्य है, ".....उसके पश्चात महाराष्ट्र की कीर्तन पध्दति पर 'पोस्टर' लिखा गया। वैसे बचपन से कीर्तन घर में उन्होंने देखा था। ट्राइबल वेलफेयर में जब थे, तब आदिवासी लोगों की समस्याएं देखी थी। वह सब "पोस्टर" में उभरा।"[८] यह बात अलग है, कि कुछ समीक्षाक उसपर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव अनुभव करते हैं, फिर भी इस नाटक का वर्गीय संघर्ष आदिवासी परिवेश का यथार्थ है, जो नाटक में स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त है।

यह तो युग-युग का वास्तव सत्य है, कि शोषक वर्ग की निर्मम तानाशाही में शोषित वर्ग अपना जीवन, अपने ही हाथों कुचलता आया है। चाहे वह पूँजीवादी सत्ता हो, अधिकारी प्रशासक वर्ग हो, तथा पुलिस एवं न्यायर्यंत्रणा हो, सभी इस सर्वहारा वर्ग के शोषण में जिम्मेदार हैं, कोई प्रत्यक्षात: उनका खून चुसता है, तो कोई उसे बनाये रखने में अपनी सत्ता एवं अधिकारों का उपयोग करता है। इस शोषण का मूलाधार है अर्थ, जिसकी प्राप्ति की लालसा ने मानवता को अंधा बना दिया है, पुलिस एवं प्रशासन व्यवस्था को निकम्मा कर दिया है, जिससे पूँजीपति वर्ग की जडें दिन-प्रतिदिन अत्य धिक मजबूत होती जा रही हैं। पूँजीपति वर्ग एक ऐसा शक्तिशाली वर्ग हे, जो केवल मजदूर वर्ग का ही शोषण नहीं करता, बल्कि समूची समाजव्यवस्था एवं राज-नीतिक व्यवस्था को भी पैसे के बल पर खरीद लेता है। धन का लालच बहुत ही खतरनाक बीमारी है, जो अपने भयंकर रूप में समाज में रक्तबीज की तरह फैलती जा रही है, जिसका बढता प्रदुषण मानवता की स्थापना में बडा ही घातक सिद्ध हो रहा है।

आत्यंतिक कम मजदूरी में शोषकवर्ग की तानाशाही में दिन-रात कडी मेहनत करता जिससे तन पर आवश्यक कपडा एवं दो जून की रोटी तक मुनासिब नहीं होती ऐसी शोषित, पीडित अवस्था में मजदूर

पटेल की खेती में काम करते हैं। अनपढ़ एवं अज्ञानी अवस्था के कारण वे अपने अस्तित्व एवं स्वायत्त अधिकारों के प्रति भी बेखबर रहते हैं। अपनी सामाजिक सुरक्षा एवं अधिकार प्राप्ति के प्रति वे अनजान हैं, क्योंकि पूँजीपति वर्ग की शोषण नीति उन्हे अपने बारे में सोचने का मौका ही नहीं देती। हमेशा "काम करो भाई काम करो, देश का ऊँचा नाम करो" की रट लगी रहती है। ऊपर से मालिक की दया से शराब का नशा उनपर मेहरबान रहता है। ऐसी स्थिति में वे भला अपने अस्तित्व के प्रति सोच भी कैसे सकते है ?

एक ओर स्वतंत्र भारत प्रगति की ऊँची उडान ले रहा है, तो दूसरी ओर आदिवासी प्रांत का जनजीवन आज भी आदिम युग का सा रहा है। केवल एक दोना चिरौंजी में एक दोना नमक देकर उनकी मेहनत का हिसाब किया जाता है। साथ ही यह परम्परा बनी रहने के लिए शोषक-वर्ग का शोषणातंत्र हमेशा सजग रहता है। धर्म के नाम पर अज्ञानी मजदूर वर्ग में पाप-पुण्य की अंधश्रद्धाएं फैलायी जाती हैं, ताकि उनका दिमाग उसी में ही उलझाता रहे और पाप का भय एवं पुण्य की आस से मालिक के प्रति उनकी निष्ठा कायम रहे।

चैतिद्वारा हँसी-मजाक में मायके से लाया गया "पोस्टर" मजदूरों में अधिकार चेतना एवं सजगता की भावना निर्माण करता है। पोस्टर से वे पहली बार समझ जाते हैं, कि उनका शोषण हो रहा है। इस शोषण को रोका जा सकता है। अपने खोये हुए अधिकारों को फिर से प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से वे प्रयत्नशील रहते हैं। जिससे उनकी मजदूरी एक रुपिये से डेढ रुपिये तक बढ जाती है। परंतु अंत में आपस की फूट के कारण यह संघर्ष अधूरा रह जाता है, टूट जाता है। सुखलाल जो आदिवासी ही है, पैसे एवं थोडीसी सुविधा के कारण अपने मजदूर भाईयों को जेल भिजवाता है और शोषण उनकी शापित नियति बनकर

रह जाता है।

यह शोषण मजदूर वर्ग का सर्वांग शोषण है, जो आदिवासी जीवन की प्रखर वास्तवता को प्रस्तुत करता है। अत: मजदूरो को शोषित वर्ग को अपनी सुरक्षा, अपने अधिकार खुद लडकर ही हासिल करने होंगे। उन्हें अपना संघर्ष बीच में ही नहीं छोडना चाहिए था। संघर्ष की धारा उस वक्त तक तेज रहनी चाहिए जब तक पूरी तरह से शोषण नीति नष्ट नहीं होती, आर्थिक, सामाजिक स्वायत्तता एवं सुरक्षा प्राप्त नहीं होती, किंतु वास्तवता तो यह है कि प्रलोभन एवं सुविधा का लालच मनुष्य को अंधा बना देता है। ऊपर से लेकर नीचे तक सभी भ्रष्ट हैं। चाहे फॉरेस्ट अफसर हो, पुलिसयंत्रणा हो अथवा मुकादम सुखलाल हो, सभी को पूँजीपति सत्ता पैसे के बल पर अपना दास बना लेती है। एक आदमी दूसरे आदमी का, वर्ग का निजी स्वार्थपूर्ती के लिए खून चूसता है। यह परिस्थिति अत्यंत भयावह है, जिसमें शीघ्र सुधार एवं विकास की आवश्यकता है। डा. शंकर शेष ने इसी आदिवासी प्रदेश के शोषणतंत्र को यथार्थ दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

३.२.३ आर्थिक संघर्ष :

प्राचीन काल से ही अर्थ मनुष्य जीवन में सक्रीय रहा है। अर्थ विभाजन पर ही सामाजिक विभाजन अवलम्बित रहता है, अर्थात् अर्थ के आधार पर ही समाज में उँच-नीच, अमीर-गरीब, जैसे विषम वर्ग निर्माण होते हैं। अर्थ का विषम एवं असंगत विभाजन सामाजिक विषमता एवं वर्ग-व्यवस्था को जनम् देता है। किसी भी समाज की संपन्नता एवं सुव्यवस्थितता अधिक तर उसकी आर्थिकता पर अवलम्बित रहती है। जिस समाज में संस्कृति में अर्थ को सुबत्ता हो वह समाज स्वस्थ एवं प्रगतिशील रहता है। अर्थ के अभाव में समाज पतन की ओर बढता हुआ, विपत्तियों के बादलों

में घिर जाता है। आर्थिक स्थिति पर ही किसी भी समाज का पिछडापन अथवा उन्नति अवलम्बित रहती है किंतु कभी-कभी समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग को अर्थ के अतिरिक्त मोह से ठगने की कोशिशा करता है। वह गलत तरीके से धन हडप करने लगता है। मनुष्य की यही स्वार्थ-नीति आर्थिक विषमता को जनम् देती है। अत: एक ओर पूँजीपति वर्ग आराम से जिंदगी गुजारता है, तो दूसरी ओर सामान्य मजदूर वर्ग आज भी दरिद्रता की खाई में तडप रहा है।

अर्थ की विषमता वर्गव्यवस्था का निमार्ण करती है और वर्गव्यवास्था संघर्ष को आमंत्रित करती है। समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग पर अवलम्बित रहता है। श्रमिक, मजदूर वर्ग की श्रमशक्ति पर ही शोषक पूँजीपति वर्ग की जडें मजबूत होती हैं। पूँजीपति वर्ग की स्वार्थ-लिप्सा, भोगवादिता दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है, जिसमें बेचारा श्रमिक वर्ग निगलता जा रहा है। जब इसका अतिरेक बढ जाता है, तो अनायास ही संघर्ष की चेतना ज्वालामुखी बनकर धधकने लगती है।

"पोस्टर" नाटक का आर्थिक संघर्ष धीरे-धीरे परिस्थिति सापेक्षता में अग्रेसित होता है। सभ्यता की रोशनी से बहुत दूर आदिवासी इलाके में बसा हुआ, सौ-दो सौ की बस्ती का एक छोटासा गाँव-जहाँ की जीवनत्रासदी नाटककार कीर्तनकार के माध्यम से प्रस्तुत करता है। छोटेलाल पटेल के पूर्वज धन्नालाल ने यहाँ की संस्कृति को अपनी स्वार्थनीति से खरीद लिया था। एक दोना चिरौंजी के लिए एक दोना नमक देकर उन्होंने इस गाँव पर अपनी सत्ता स्थापित की। पटेल भी यही परम्परा आगे जारी रखता है। दिनभर कडी मेहनत करने के बाद इन आदिवासियों को मिलती है, केवल एक रूपिया मजदूरी, जिससे पेटभर रोटी तक मयस्यर नहीं होती। इतनी कम मजदूरी में वे आदिवासी मजदूर लज्जारक्षण के लिए आवश्यक वस्त्र तक जुटा नहीं पाते। यह आर्थिक शोषण न जाने कितने युगों से

चलता आया है। मजदूरों का अज्ञान इस शोषण को और भी बढावा देता है। ये मजदूर इतने अज्ञानी एवं अनपढ़ हैं, कि उनपर होनेवाले अत्याचार का उन्हें एहसास तक नहीं होता। पटेल जो भी देता है, उसी में रूखा-सुखा खाकर वे संतोष मानते हैं।

चैतीद्वारा कुतुहलवश मायके से लाया गया "पोस्टर" मजदूरों में आर्थिक स्वतंत्रता की चेतना निर्माण करता है, जिसपर मजदूर युनियन के नेता राघोबा की तस्वीर छपी हुअी है, और मजदूरों की मँागे लिखी हुअी हैं। इस पोस्टर को पढ़कर पटेल भडक उठता है और डरकर उनकी मजदूरी पच्चीस पैसे से बढा देता है। इससे मजदूरों की संघशक्ति धीरे-धीरे दृढ होती जाती है। वे पोस्टर के माध्यम से अपना संघर्ष जारी रखते है। गुरूजी व्दारा "पोस्टर" का ज्ञान होने पर वे चार रूपिये मजदूरी पाने के लिए अपना संघर्ष आगे जारी रखते हैं। पटेल फिर से पच्चीस पैसे मजदूरी बढा देता है। अर्थात उनकी मजदूरी एक रूपिये से डेढ रूपिये तक बढ जाती है। यह उनके संघर्ष की, संघशक्ती की दूसरी विजय थी।

पोस्टर ही मजदूरों में आर्थिक स्वतंत्रता की चेतना जगाता है। उन्हें उनके अधिकारों के प्रति सचेत करता है। अत: डेढ रूपिया मजदूरी मिलने पर भी कल्लु संतुष्ट नहीं होता। उसकी मँाँग चार रूपिये की है। कुछ मजदूर इस समय कल्लु का साथ देते हैं, तो मजदूर कल्लू का विरोध करता है। उन्हे डर है कि विरोध करने से पटेल बहुत चिढ जायेगा और जो हाथ आया है, वह भी जाता रहेगा। तो कुछ मजदूर पचास पैसे की बढौती पर ही संतुष्ट हैं। यहँा अर्थ को लेकर सामुहिक संघर्ष की चेतना कुछ धीमी पड जाती है, किंतु कल्लु उस संघर्ष की चेतना को प्रवाहीत रखने की कोशिश करता है। वह कहता है, "--- हमने चार रूपिये मँागे थे, आठ आने नहीं।" [९] कल्लु अपनी मँाग पर अटल है। अत: पटेल उसे ही हटाकर इस संघर्ष को समाप्त करना चाहता है। वह कल्लु

को मुकादम पद एवं चैती को हवेली का लालच दिखाकर उन्हे खरीदना चाहता है। उनके आर्थिक संघर्ष को मिटाना चाहता है। परंतु समय पर ही कल्लु और चैती पटेल की इस कूटनीति से परिचित हो जाते हैं और "पोस्टर" के माध्यम से अपना मूक विरोध दशाति हैं। आगे चलकर यही सामूहिक आर्थिक संघर्ष व्यक्तिगत समस्या के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

यहाँ मजदूरों का वह आर्थिक संघर्ष पूरी तरह से सफल नहीं होता। उन्हें चार रुपिये मजदूरी नहीं मिलती। कुछ हद् तक ही इसमें वे सफल हो जाते हैं। संघर्ष की पूरी सफलता के लिए आवश्यक हैं, एक संघ मजदूर शक्ति तथा दृढनिश्चय, जो मजदूरों में नहीं है। वे तो अल्पसंतुष्ट हैं। अत: डेढ रुपिया मजदूरी मिलने पर वे संतोष अनुभव करते हैं। एखाद् कल्लु अथवा एखाद् चैती उसमें परिवर्तन नहीं ला सकती। उसके लिए सभी का सक्रीय संघर्ष आवश्यक है, जिसके लिए मजदूरों को समझदार एवं शिक्षित बनना भी आवश्यक है। तभी वे अपने अन्याय के खिलाफ सशक्त आवाज उठा सकते हैं और फल की प्राप्ति कर सकते हैं, क्योंकि समूहशक्ति के आगे बडी से बडी सत्ता भी झुक जाती है। जिसका प्रमाण खुद पटेल है। जिसने इस शक्ति के सामने हारकर डेढ रुपिये मजदूरी बढा दी, किंतु मजदूर वर्ग को अपनी लडाई उद्देश्य के अंतिम सोपान तक जारी रखनी चाहिए। तथी सफलता हाथ लग सकती है।

३.२.४ धार्मिक संघर्ष :

धर्म मानव समाज का आधारभू तत्व रहा है। समाज की सर्वांगिण उन्नति के लिए, उसके मार्गनिर्देशन के लिए उचित-अनुचित का भेद बताने के लिए धर्म की नितांत आवश्यकता रहती है। जिस समाज में धर्म का पालन, अनुसरण होता है, वह समाज स्थैर्य की ओर अपने उन्नतिशील

कदम बढाता है। धर्म की अधोगती समाज की अधोगती है। अधर्म का आचरण समाज को, व्यक्ति को पतन के रास्ते पर ले आता है। सच्चा धर्म व्यक्ति को कर्तव्यशील, कर्तव्यपरायण बना देता है। उसे इन्सानियत की ओर ले जाता है। अत: हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है, कि वह स्वधर्म का अनुसरण कर समाज को उन्नति के शिखर तक ले जाए, क्योंकि व्यक्ति-विकास में ही सामाजिक-विकास निहित रहता है।

सच्चा धर्म वही है, जो इन्सान को केवल इन्सान के रूप में देखने की दृष्टि देता हो। उसमें दया, क्षमा, शांति, प्रेम, सहिष्णुता आदि मानवतावादी भाव जगाता हो। सत्य एवं न्याय की रक्षा के लिए उसे अन्याय के खिलाफ लडने की प्रेरणा देता हो। निर्भय एवं स्वस्थ समाज जीवन के लिए मानवतावादी धर्म की स्थापना अनिवार्य है, जिसे डा. शेष ने "पोस्टर" में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से सूचित किया है।

नाटक के आरंभ में ही इस धार्मिक संघर्ष की झलक मिल जाती है। कीर्तनकार ब्रहमनिरूपण करते हुए महाभारत के युद्ध का प्रसंग श्रोताओं के सामने प्रस्तुत करते हैं। महाभारत का पहला दिन है। महावीर अर्जुन अपने कुशल सारथी श्रीकृष्ण एवं समस्त सेनासहित कौरवों की विशाल सेना के सामने युद्ध के मैदान में खडे हैं। वे देखते हैं, कि शत्रु रूप में उपस्थित समस्त योद्धा उसके अपने ही रिश्तेदार है। एक वीर योद्धा होकर भी अर्जुन का मन इस कशमकश में पडता है, कि वह अपने ही सगे सम्बन्धियों को कैसे मारे ? भले ही वे उसके दुश्मन हों, पापी हों। श्रीकृष्णजी अर्जुनजी के मन की आशंका, बेचैनी दूर करते हुए उसे स्वधर्म की याद दिलाते हैं। वे कहते हैं कि हर क्षत्रिय योद्धा को अपने क्षात्रधर्म का पालन करना चाहिए। सत्य, न्याय, धर्म, संस्कृति की रक्षा के लिए, स्वस्थ समाज जीवन की सुरक्षा के लिए अन्याय, अत्याचार के खिलाफ लडना, उसे जडसहित मिटाना हर क्षत्रिय योद्धा का कर्तव्य है। चाहे

शत्रुरूप में उसके सामने अपने ही लोग क्यों न हो, और यदि वह अपनत्व की खातीर उनसे लड़ने के बजाय उन्हे संरक्षण दे, तो यह क्षात्रधर्म की दृष्टि से घोर पाप होगा। अपने स्वधर्म के प्रति अन्याय होगा। खुद श्रीकृष्णजी के ही शब्दो में, "------- यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा तो स्वधर्म को खोकर पाप को प्राप्त होगा। अपने इन अधर्मी रिश्तेदारो के शरीरों का मोह ----- इस नाशवान शरीर को मोह ----- अर्जुन सत्य तो आत्मा ही है। उसी की पुकार सुन।"[१०] इसप्रकार अर्जुन के मन में धर्म-अधर्म को लेकर उत्पन्न व्दंव्द को, श्रीकृष्णजी स्वधर्म की चेतना जाग्रत कर मिटाने की चेष्टा करते है। सच्चे धर्म की जागृति, स्वधर्म की जागृति अर्जुन को स्थिरचित्र एवं कर्तव्यशील बनाती है। उसे कर्तव्य के रास्ते पर अग्रेसित करती है।

"पोस्टर" के आरंभ का यह दृश्य अनायास ही धर्म, अधर्म की व्याख्या करता है। सच्चे मानवतावादी धर्म के स्वरूप पर प्रकाश फैलाता है। यह आरम्भिक नाटकीय दृश्य आदिवासी कथा के शोषक-शोषित संघर्ष में अप्रत्यक्ष रूप से *सम्बन्धित* है। वर्तमान मनुष्य का जीवन तो विपत्तियों से घिरा हुआ है। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की संकल्पनाओं से दूर वह अपने निजी कर्तत्व को, स्वधर्म को भूल गया है। नितांत वैयक्तिक जीवन को वह जी रहा है, जिसमें केवल आत्मकेंद्रिता, स्वार्थवादिता ही दिखाई देती है। अत: समाज में दिन-प्रतिदिन अन्याय, अत्याचार भ्रष्टाचार जैसे अनाचार बढ रहे हैं। उसकी कर्तव्यबुदिध भ्रष्ट हो गयी है। यही कारण है कि पटेल अपने स्वार्थ से परे कुछ भी नहीं सोच सकता। स्वस्वार्थ की पूर्ति के लिए वह कुछ भी करने पर उतारू हो जाता है।

आदिवासी प्रदेश का सर्वेसर्वा पटेल अपनी स्वार्थपूर्ती के लिए मजदूरों का सर्वांग शोषण करता है। आदिवासी युवतियों पर बुरी नजर रखता है। अपने धंदे को सुरक्षित रखने के लिए रिश्वत के बल

वह पुलिसयंत्रणा प्रशासन व्यवस्था को भी खरीद लेता है। उन्हें सुरा और सुंदरी के मोहजाल में, ऐशोआराम सुखवस्तुओं में फँसाकर सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है। अत: पटेल केवल आधुनिक शोषक ही नहीं, बल्कि वह भ्रष्टाचारी, अत्याचारी एवं अधर्मी दुष्ट है। पटेल का यह समस्त व्यवहार उसके दुराचारी व्यक्तित्व एवं अधर्म को प्रस्तुत करता है। आज समाज में धर्म, नीति मानवीयता जैसे मूल्य निजी आत्मकेंद्री वृत्ति के कारण स्वार्थांधता के कारण नष्ट हो चुके हैं। जिससे समाज में शोषक-शोषित, अमीर-गरीब, उँच-नीच जैसी विषमता पनप रही है। उच्च धनिक वर्ग की यह शोषण वृत्ति सर्वहारा वर्ग को निगल रही है। समाज में इसप्रकार अधर्म का बढ रहा अतिरेक रोकने की और मानवतावादी चेतना जगाने की आवश्यकता है, तभी समाज में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कदम मिलाकर चलेंगे। अर्थ एवं काम का अतिरेक मनुष्य को मनुष्यत्व के पद से हटाकर पशुत्व की ओर ले जाता है। पटेल तथा उसकी सत्ता को बनाये रखनेवाले सभी भ्रष्टाचारी व्यक्ति, जो उच्च अधिकारी हैं, पुलिस हैं, सभी इस मोहजाल में फँसकर पशु बनते जा रहे हैं। इन्हें फिर से इन्सान बनाने के लिए इसी मानवतावादी धर्म की आवश्यकता है, जिसे डा. शेष ने बडी सूक्ष्मता से सूचित किया है। इसी मानवतावादी धर्म की चेतना से समाजीवन स्वस्थ, स्थिर एवं संपन्न बनेगा। वह वर्गविरहित, भेदविरहित बनेगा। ऐसे समय कोई भी पटेल किसी गिरीह मजदूर वर्ग का शोषण नहीं करेगा। सत्ता-सुविधा के लालच में कोई सुखलाल बन अपने लोगों की अस्मिता नहीं बेचेगा। ऐसे समाज में हर नारी का उचित सम्मान एवं आदर रहेगा। धर्म एवं अर्थ साथ-साथ चलेंगे। जिससे समभावना भी मर्यादा के अंदर ही रहेगी। आज वर्तमान समय में धर्म एवं मोक्ष का हो रहा लोप तथा अर्थ एवं काम का बढता स्वरूप ही इस विषमता को शोषण को, अमानवीयता को जनम देता है। जिसे रोकने के लिए डां शेष मानवतावादी धर्म की स्थापना महसूस करते हैं, जिससे सम्पूर्ण सामाजिक कल्याण हो सके।

३.२.५ सामाजिक संघर्ष :

समाज में संघर्ष की चेतना उस वक्त निर्माण होती है, जब समाजजीवन विपत्तियों के बादलों में घिर जाता है। समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग को अर्थ के लालच में, सत्ता के बल पर निचोडने की कोशिश करने लगता है। उच्च धनिक वर्ग की अर्थलालसा एवं कामवासना के कारण सर्वहारा वर्ग की स्थिति दयनीय, शोचनीय बन जाती है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण समाज जीवन ही अस्वस्थ हो जाता है। समाज की यही स्थिति नितनूतन समस्याओं को जनम् देती है। चाहे ये समस्याएं फिर आर्थिक हो अधिकारों की हो, स्वत्व सुरक्षा की हो, नारीत्व रक्षा की हो। इन समस्याओं से निपटने के लिए, समाजजीवन सुस्थिर, सुशांत एवं संकटमुक्त बनाने के लिए संघर्ष की चेतना सामाजिक अनिवार्यता बन जाती है।

नागर संस्कृति से बहुत दूर, आधुनिकता से बेखबर जंगली इलाके में बसा हुआ यह छोटासा आदिवासी गाँव है, जहाँ की बस्ती भी सौ-दो-सौ तक सीमित है, जहाँ आँवला, गोंद, चिरौंजी, हर्रा, बहेड़ा, महुए के घने पेड हैं। इस हरित साधन-संपत्ति के खुद मालिक होकर भी आदिवासी जन उसके लाभ से वंचित है। आदिम युग का पिछड़ापन आज उनके जीवन की भी प्रधान विशेषता बनकर रह गया है। यह पिछड़ापन एवं सादगी उनके समस्त जीवन में घुल-मिल गयी है। यहाँ की अपनी एक अलग संस्कृति है। अज्ञान और अंधश्रद्धा जिसकी धरोहर है। दिनरात कितनी भी कड़ी मेहनत करो, जीवनधारा का रुख बदलता ही नहीं। छोटेलाल पटेलने जो इस आदिवासी प्रदेश का सर्वेसर्वा है, इस भोलेभाले अनपढ़ आदिवासी वर्ग पर अपना आतंक जमा रखा है। जिसका विरोध करने की हिम्मत इस अनपढ़ अंधश्रद्धा भोलेभाले वर्ग में है ही नहीं। यह संस्कृति युग-युग से चली आ रही है, जिसे पटेल ने बड़ी सावधानी से सँभालकर रखा है।

इन आदिवासियों में जीवन के प्रति न कोई उमंग है, न कोई निश्चित ध्येय, क्योंकि वह चेतना उनमें अभी तक निर्माण ही नहीं हुई है। केवल पटेल की खेती में दिन रात कड़ी मेहनत करना, जिससे दो वक्त की रोटी एवं लज्जा रक्षण के लिए आवश्यक वस्त्र तक मुनासिब नहीं होते। यही उनका जीवन है। जंगल से हर्रा, बहेड़ा, गोंद चिरौंजी, आदि इकठ्ठा कर पटेल के कारखाने में उसकी छँटाई एवं सफाई का काम किया जाता है। पटेल यह तैयार काल शहर भिजवाकर लाखों का मुनाफा प्राप्त करता है, और आदिवासियों को मिलती है, केवल एक रुपिया मजदूरी। यह आर्थिक विषमता आदिवासियों के जीवन को सभी ओर से निगल रही है। आदिवासियों को उनकी हालत से वर्तमान दुरावस्था से दूर रखने के भी बहुत तरीके अपनाये जाते हैं। पटेल की कृपा से उनपर, दिनभर की कड़ी मेहनत के बाद शराब का नशा सँवार होता है, ताकि उनका दिमाग ठंड़ा रहे। बीच-बीच में अखंडानंद जैसे नकली साधु के द्वारा उनकी धर्मभावना की कमजोरी को पकड़कर उनमें अंधश्रद्धाएं फैला दी जाती हैं, ताकि आदिवासी संस्कृति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न आए। पटेल की यह कूटनीति आदिवासी समाज का सर्वांग शोषण करती है। निरीह, अनपढ़ आदिवासी इस दाँवपेच को समझ नहीं पाते।

प्रशासनव्यवस्था एवं पुलिसव्यवस्था भी इस शोषणकर्ता की गुलाम बन अपने अधिकारों का दुरुपयोग करती है। इसी अधिकारी वर्ग तथा सत्ता की मदद से आदिवासी समाज का शारीरिक, आर्थिक, मानसिक शोषण होता है। आदिवासी नारीत्व भेड़ बकरी की तरह खुले आम नीलाम होता है। आलीशान बंगलो में प्रशासकीय अधिकारियों की खातिर शराब एंव व्हिस्की के दौर लगाये जाते हैं। गज़ल की महफिल सजायी जाती है। गर्म मुर्गा खिलाया जाता है। उधर आदिवासी नारीत्व उनकी सेवा में हाजिर रहता है। उधर श्रमिक-मजदूर दो वक्त

की रोटी के लिए भी मूँहताज रहता है। लज्जा-रक्षण के लिए उन्हें आवश्यक वस्त्र भी बड़ी मुश्किल से मुनासिब होते हैं। एक ओर मुठ्ठी भर लोग शाही विलासिता चैन भोग में मस्त हैं, तो दूसरी ओर वर्तमान भारत की दरिद्रता नंगे पाँव दर-दर की ठोकरें खा रही है। भारतीय समाज का यह तीखा वास्तव आदिवासियों के जीवन के रूप में 'पोस्टर' में स्वाभाविकता से उभर आया है।

आदिवासियों के जीवन में सुख की, आशा की किरण तक नहीं आती, जिससे वे अपने जीवन का दुखी यथार्थ दाहक वास्तव देख सके। उनके जीवन की रोशनी तो खुद अधिकारी वर्ग ने ही छीन ली है। अत: दरिद्रता का शोषण का, गुलामी का अँधियारा तो उनका कटु वास्तव बनकर रह गया है। राघोबा जैसे कुछ इने गिने लोग हैं, जो उन्हें मुक्त कराने की, इस विशाल समाजविघातक शक्ति से लोहा लेने की कोशिशा किया करते हैं, किंतु केवल एक राघोबा इस विषमता को, समाज-कंटक वृत्ति को नष्ट नहीं कर सकता। वह संघर्ष की चेतना जरूर निर्माण कर सकता है, किंतु उसे जीवित रखने के लिए, कामयाबी के अंतिम सोपान तक संघर्षशील बनाये रखने के लिए एक से अधिक 'राघोबा' ओंकी आवश्यकता है। कल्लु एवं चैती जैसे सजग, संघर्षशील युवा नेतृत्व की आवश्यकता है। जो एकसंघ हो, सजग हो, सक्रीय हो। जिसमें शोषकवर्ग की सत्ता जड़ से उखाड़कर फेंकने की, भ्रष्ट एवं लाचार पुलिसयंत्रणा तथा अधिकारी वर्ग को भी सजाएं मौत देने की शक्ति उसमें हो। समाज की यह एकसंघता निश्चय ही कामयाबी का सेहरा पहनेगी। ऐसी स्थिति में न शोषक पटेल निर्माण होंगे, न सुविधाभोगी, लाचार, सुखलाल पैदा होंगे। तभी समाज में मानवता की स्थापना हो सकती है। सामाजिक समता प्रस्थापित हो सकती है।

डा. शंकर शेष ने यह सामाजिक संघर्ष वास्तव परिस्थिति के आलोक में प्रस्तुत किया है, जिसकी दाहकता पाठकों के मन को झकझोर देती है। उन्हें इस परिस्थिति पर सोचने के लिए बाध्य करती है, तथा सक्रिय सहयोग के लिए प्रेरित भी करती है। यही डा. शेष की सफलता है।

३.२.६ स्त्री-पुरुष संघर्ष :

नारी भारतीय संस्कृति का जैसे मूलाधार रही है। वैसे ही वह धर्म की पुनित आत्मा भी है, क्योंकि नारी के सहयोग के बिना कोई भी धार्मिक कार्य पूरा नहीं होता। वैदिक धर्मग्रंथों में एवं पुराणों में उसके सुजाता, सुशीला, सुनीता, गृहिणी, माता, सेविका रूप की मुक्त कंठ से स्तुति की गयी है एवं उसके उज्ज्वल गुणसौंदर्य को पूज्य माना गया है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" तथा "जननि जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" कहकर उसके उज्ज्वल स्वरूप को देवता समान एवं स्वर्ग से भी उँचा स्थान देकर प्रतिष्ठित किया गया है। यह नारी का उज्ज्वल एवं उदात्त स्वरूप है, जो बहुत ही सुंदर है, किंतु दूसरी ओर पुरुष की अतिरिक्त वासनांधता ने नारी के इस उज्ज्वल स्वरूप को कलंकित किया है। उसके स्वतंत्र अस्तित्व को व्यक्तित्व को तहस-नहस कर दिया है। एक ओर समाज में नारी का आदरणीया, पूज्या रूप प्रतिष्ठित है, तो दूसरी ओर उसका भोग्या रूप भारतीय समाज का न मिटनेवाला कलंक है। कटु यथार्थ सत्य है।

भारतीय धर्मग्रंथो में नारी के प्रति एक ओर आदरभाव अभिव्यक्त है, किंतु दूसरी ओर प्रत्यक्ष व्यवहार में उसे पुरुष से भी निम्न स्थान दिया गया है, दिया जाता है। आज भी वह पुरुषवर्ग के अन्याय अत्याचार की केंद्र रही है। उसकी वासनांधता का शिकार बन अपने

स्वतंत्र अस्तित्व को, व्यक्तित्व को कुचलती, मिटाती आ रही है। जब-जब समाज में पुरुषवर्ग द्वारा निरीह नारित्व कुचल दिया जाता है, उसपर होनेवाले अन्याय अत्याचार की परिसीमा होती है, तो संघर्ष की ज्वाला अनायास ही निर्माण होती है, जो बढ़ते हुए अन्याय अत्याचार के साथ भयंकर शोलो में परिवर्तित हो जाती है। भारतीय समाज में स्थित स्त्री-पुरुष वर्ग की यह विषमता अन्यायपूर्ण स्थिति ही समाज में स्त्री-पुरुष संघर्ष को जनम् देती है।

जमींदार वर्ग की भोगवादिता, दासता आदिवासी नारीजीवन की शापित नियति बनकर रह गया है। नाटक में मजदूर-२ के संवाद परिवेश की भयंकारिता को उजागर करते हैं, " ..... ये पटेल तो फिर भी अच्छा है। इसका दादा, तो सुनते हैं, एक जल्लाद ही था। उसके बखत तो गौने के बाद हर बहु एक रात उसकी हवेली में जाती थी।"[१] यह स्थिति कितनी भयानक है कि जहाँ हर आदिवासी बहु को अपनी सुहागरात पटेल के साथ मनानी पडती हो, जहाँ आदिवासी नारीत्व खुले आम लुटता है, वहाँ शासकीय सुरक्षा व्यवस्था की कितनी आवश्यकता है, किंतु दिक्कत यह है, कि प्रशासकीय यंत्रणा, पुलिसयंत्रणा जिनकी व्यवस्था आदिवासी प्रदेश की सुरक्षा के लिए, हिफाजत के लिए की गयी है, वे ही इस अन्याय-अत्याचार में पटेल का साथ देते हैं। अर्थप्राप्ति के लालच में जमींदार वर्ग की चापलूसी करते हैं, जिसमें निरीह आदिवासी नारीत्व झुलसता रहता है, पिसता रहता है।

चैती जो प्रस्तुत नाटक की नायिका है, उसके साथ भी यही होता है। आदिवासी परम्परा के अनुसार पटेल उसकी झूटी हवेली पर लगवाता है, ताकि समय-समय पर खुद के लिए तथा आनेवाले वन अधिकारियों के भोग के लिए उसका इस्तेमाल किया जा सके, किंतु चैती इसके खिलाफ आवाज उठाती है। वही पहली आदिवासी नारी है,

जो हवेली की नौकरी को ठुकराती है। शीलरक्षा के लिए पटेल के खिलाफ जूझती है। अत: अपने ऊपर होनेवाले अत्याचार का मुकाबला करने के लिए वह सक्रीय बन जाती है। वह कहती भी है, "मैं हवेली नहीं जाऊंगी --- सुन लो, मैं हवेली नहीं जाऊंगी। तुझको मुकादम बनके जाना है, तो जा। तुझको सुखलाल बनना है तो बन ----- मगर मैं हवेली नहीं जाऊंगी। लुगडा, गहना, खाना ------ देखती हूँ कौन लगाता है मेरी ड्यूटी हवेली में ? मुझको बेचना है क्या ?"[१२] इसीतरह दृढता से डटकर वह अपनी शीलरक्षा के लिए पटेल की वासनांधता का विरोध करती है।

कल्लु और चैती 'पोस्टर' के व्दारा अपना संघर्ष जारी रखते हैं। इस मामले में केवल मजदूर-३ के सिवाय अन्य कोई भी मजदूर उनका साथ नहीं देता। यह संघर्ष उसवक्त तीव्र बन जाता है, जब पटेल इस विरोध के कारण भडककर कल्लु को कोडों से पिटवाता है। चैती इस अन्याय को सहन नहीं कर पाती और झट से पटेल के मूँह पर थूक देती है। पटेल की क्रोधाग्नि में जैसे घी पड जाता है, और वह चैती का हाथ पकड़कर उस पर जबरदस्ती करने लगता है। पटेल का यह साथ व्यवहार उसकी पाशवीयता को स्पष्ट करता है। वह कहता है, "तू साली --- तेरी यह हिम्मत ! दो टके की औरत ---- इतनी अकड ------ अब तो हवेली जायेगी ----- सीधे नहीं जायेगी तो मेरे आदमी उठा के ले जायेंगे तुझको ----- कुतिया बना के न छोड़ा तो मेरा नाम भी पटेल नहीं !"[१३] पटेल की यह अमानुषता, संघर्ष की धारा को और भी तेज करती है। मजदूर-३ इस घटना को सहन नहीं कर पाता। वह लपककर पटेल को गर्दन पकड़ लेता है और कल्लू पटेल को उसी कोड़े से मारता रहता है, जिसमें सभी मजदूर साथ देते हैं, किंतु यह संघर्ष की धारा छूट जाती है। इस संघर्ष को सत्ता के बल पर ताकद के बल पर दबा दिया जाता है। पटेल के खून के इल्जाम में सभी मजदूरों को जेल होती है और अंत में चैती को हवेली पहुँचा

दिया जाता है। नारित्व पर हो रहे ये अमानुष अत्याचार देखकर कोई भी आवाज नहीं उठाता और जो कोई खाद चैती इसका विरोध करती है, तो उसके विरोध को सत्ता के हाथ निजि स्वार्थवादिता के लिए रोक देते हैं। उनकी संघर्षशक्ती को दबा दिया जाता है। उखाड़ दिया जाता है।

इस विषमता को मिटाने के लिए नारित्व की सुरक्षा के लिए हमारी सम्पूर्ण समाजव्यवस्था एवं शासनव्यवस्था में परिवर्तन करना आवश्यक है। और यह परिवर्तन तभी हो सकता है, जब समाजमानस मानवतावादी दृष्टि अपना ले। जिसके प्रभाव से समाज में बढ़ती हुअी कामवासना एवं अर्थलोलुपता रोकी जा सके। समाज में इन चार पुरुषार्थों का समन्वित स्थान रहे। तभी समाजजीवन सभी प्रकार के संघर्ष से मुक्त हो सकता है, स्वस्थ एवं सुचारु रूप से प्रवाहित हो सकता है।

३.२.७ पति-पत्नी संघर्ष :

संघर्ष मानवी जीवन का अनिवार्य अंग है। संघर्ष के बिना जीवन अधूरा है। मनुष्य अपने जीवन में इच्छित प्राप्ति के लिए तथा कर्तव्यों को निभाते हुए विषम परिस्थितियों से जूझता रहता है। मनुष्य के यही प्रयत्न उसे उन्नतिपथ की ओर ले जाते हैं। इसी संघर्षशील वृत्ति से वह न्याय-अन्याय की सत्य-असत्य की, अच्छाई-बुराई की परख करता रहता है। इसी संघर्ष में उसकी विवेकनीति भी क्रियाशील रहा करती है, जो उसे न्याय-सच्चाई की खातीर अन्याय-अत्याचार के खिलाफ, विषम परिस्थितियों के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देती है, उसे क्रियाशील बनाती है। उसकी अस्मिता को, विवेकबुद्धी को आवाहन करती है। उसे मानवतावादी दृष्टि देती है। अत: मानवी जीवन में संघर्ष का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति के जीवन में विभिन्न प्रकार के संघर्ष परिस्थिति सापेक्षता के अनुसार निर्माण होते रहते हैं। पति-पत्नी संघर्ष भी उसी जीवन का एक अंग है। यह संघर्ष व्यक्ति के वैवाहिक जीवन का ही एक अंग है। पति-पत्नी का जीवन तो एक ही रास्ते पर गतिशील रहता है, किंतु कभी-कभी आपस में विचारभिन्नता से, कभी अर्थाभाव की वजह से, तो विपरित परिस्थितियों के कारण उनमें तनाव की स्थिति निर्माण हो जाती है। यही स्थिति जब सामाजिक स्तर पर व्यापक बन जाती है, तो वह समाजस्वास्थ्यकी दृष्टि में चिंता का विषय बन जाती है। 'पोस्टर' नाटक में पति-पत्नी संघर्ष की निर्मिति मूलत: अर्थाभाव के कारण निर्माण होती है, और वह उस आदिवासी परिवेश की उपज है।

चैती और कल्लु के द्वारा यह पति-पत्नी संघर्ष नाटक में प्रस्तुत होता है। आदिवासी परिवेश के कारण ये दोनों ही पति-पत्नी अनपढ़ है, अपने स्वायत्त अधिकारों के प्रति बेखबर हैं। पटेल की दासता में अपना जीवन बिताते हैं। केवल एक रुपिया मजदूरी पर पटेल की खेती में कड़ी मेहनत करते हैं। जंगल से हर्रा, बहेड़ा, गोंद, चिरौंजी आदि इकठ्ठा कर उसकी सफाई तथा छँटाई करने का काम भी किया जाता है, किंतु काम के अनुसार उन्हें पूरी कमाई नहीं मिलती है। अत: दैनंदिन जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती। इतनी कम मजदूरी में वे दो वक्त की रोटी एवं लज्जा रक्षाण के लिए आवश्यक वस्त्र तक जुटा नहीं पाते। यह अभावात्मक आर्थिक स्थिति उनके मन में तनाव को पैदा करती है। ये मजदूर बहुत ही कष्ट करते हैं, वफादारी से करते हैं, किंतु उनकी वफादारी का उचित फल उन्हें नहीं मिलता।

व्यक्ति जब तक अपने स्वायत्त अधिकारों से अनजान रहता है, उसे अपने पर होनेवाले जुल्म का, शोषण का एहसास तक नहीं रहता तब तक वह अपने शोषण का शिकार बनता है, किंतु जब वह सजग

बन जाता है, उसकी अधिकार चेतना, संघर्ष चेतना जागृत होती है, तब वह अपने शोषण के, अपने पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए सक्रीय बन जाता है। मायके जाकर चैती वहाँ के वातावरण से सजग बन जाती है। वह समझ जाती है, कि उनका शोषण हो रहा है। उनपर अन्याय हो रहा है, क्योंकि वह राघोबा नामक समाजसेवक के कारनामों से परिचित है। मायके से लौटने के पश्चात वह अपने पति को भी इस दृष्टि से सचेत करने का प्रयास करती है, किंतु कल्लु को ये सारी बातें उटपटांग लगती है और यही पर उन दोनों में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है।

आदिवासी पुरुष की तुलना में आदिवासी नारी को अधिक जिम्मेदारियों का वहन करना पड़ता है। परिवार की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है, पति को भी सँभालना पड़ता है। रोजी रोटी के लिए मजदूरी भी करनी पड़ती है। इसीतरह घर-बाहर की जिम्मेदारियाँ वहन करते हुए उनमें कभी-कभी विचार तथा दृष्टिभिन्नता के कारण तनाव की स्थिति पैदा होना स्वाभाविक है। चैती यह अनुभव करती है कि उसके भी माता-पिता खदान में मजदूरी ही करते है, किंतु उन्हें उस काम के लिए चार रुपिये मजदूरी मिलती है, जिससे वे अपने जीवन में दैनंदिन आवश्यकताओं को पूरा कर सकते है, किंतु यहाँ तो उसीप्रकार के दूसरे काम के लिए उन्हें मिलती है, केवल एक रुपिया मजदूरी, जिससे दो वक्त की रोटी भी बड़ी मुश्किल से जुट जाती है। चैती इस दृष्टि से अपने पति को सचेत करने की कोशिश करती है। वह बताती है, कि उसके बाबा ने उन दोनों के लिए अच्छे कपड़े दिए है। बाबा की आर्थिक स्थिति भी अब पहले से अच्छी है, वे अब चाय भी पीते हैं। अच्छे कपडे पहनते हैं। यह सब राघोबा की प्रेरणा से, मालिक से संघर्ष करने के बाद ही हुआ है। वह पति से अनुरोध भी करती है, कि वे दोनों भी यह गाँव छोड़कर उधर खदान में काम के लिए चले जाएँ, ताकि वे सुख से रह सके, किंतु कल्लु इस बात का

विरोध करता है। वह इसके लिए अपना गाँव छोड़ने के लिए, मालिक से बगावत करने के लिए तैयार नहीं है। उस वक्त चैती बता देती है, कि " ..... काहे का भला ..... न ठीक से पहनने को, न खाने को।"[१३] यहाँ अर्थ स्तर को लेकर चैती और कल्लु में प्राथमिक संघर्ष छिड़ जाता है।

चैती राघोबा के व्यक्तित्व से, कर्तृत्व से परिचित है, प्रभावित है। जिसतरह खदान के मजदूर राघोबा की बात मानते हैं, स्वायत्त अधिकारों की प्राप्ति के लिए मालिक से संघर्ष करते हैं, यहाँ तक कि मालिक द्वारा मुफ्त की दी हुअी शराब तक नहीं पीते। पूरी तरह से वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनकर वे शोषण के खिलाफ लोहा लेते हैं। संघर्ष के बल पर अपने अधिकारों को प्राप्त करते हैं। चैती इस संघर्ष से प्रभावित होती है। वह भी चाहती है, कि हम भी इसी तरह मिलाकर अपनी अधिकार-प्राप्ति के लिए संघर्ष करें, किंतु कल्लु यहाँ चैती के मत से सहमत नहीं है। चैती के मतानुसार न वह शराब छोड़ने के लिए तैयार है, न गाँव छोड़कर खदान में जाने के लिए। वह तो "हम भले ..... हमारा मालिक भला" कहकर ही उसमें संतुष्टी का अनुभव करता है।

अर्थ की लालसा एवं सुविधा का प्रलोभन व्यक्ति के विवेक को पंगु बना देता है। मजदूर वर्ग का संघर्ष जड़ से उखाड़कर फेंकने के लिए पटेल नयी चाल चलता है। वह मजदूरों के नेता कल्लु को ही अर्थ-सुविधा के प्रलोभन से खरीदना चाहता है। अत: वह उसे मुकादम बनाता है, और चैती को हवेली की ड्यूटी पर लगाता है। प्रारंभ में वे दोनों भी इसका अर्थ नहीं समझ पाते। बाद में अन्य मजदूरों द्वारा हवेली की ड्युटी का मतलब समझाने पर चैती स्पष्टता से उसका विरोध करती है और मुकादम पद छोड़ने के लिए कहती है। कल्लु प्रारंभ में यह नौकरी छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। सुविधा के मोह से वह वास्तवता से बेखबर रहता है।

अत: चैती उसका विरोध करती हुअी कहती है, " मैं हवेली नहीं जाऊंगी .. सुन लो, मैं हवेली नहीं जाऊँगी। तुझको सुखलाल बनना है, तो बन ..... मगर मैं हवेली नहीं जाऊँगी। लुगडा, गहना, खाना .... देखती हूँ कौन लगाता है मेरी ड्यूटी हवेली में। मुझको बेचना है क्या ?"[१५] इसतरह चैती स्वत्व रक्षा की खातीर हवेली की ड्यूटी से साफ इन्कार करती है, तो कल्लु उसे कहता है, " तू नहीं जायेगी ..... तो वह मेरे को काम से निकाल देगा।"[१६] इस वक्त चैती का स्वाभिमान जागृत होता है। थोडीसी सुख-सुविधा एवं पैसों की खातीर पति अपनी पत्नी की इज्जत बेच रहा है। इसे वह सह नहीं सकती। उसका नारित्व जाग उठता है। पति के इस व्यवहार का साफ-साफ विरोध करती हुअी, तथा उसके विवेक को जागृत करती हुअी वह कहती है, " बढौती के नाम पे तू भी नामरद हो गया क्या रे ..... सुखलाल जैसा। औरत को बेच के मुकादमी करेगा ? गांव का कोई आदमी नहीं बोलता ..... इस वास्ते तू भी चुप रहेगा ?"[१७] यहाँ पति-पत्नी का यह संघर्ष वास्तव धरातल पर विपरित परिस्थितियों के कारण निर्माण होता है। इस संघर्ष में, अंत में चैती ही सफल होती है। वह उसके विवेक को, पुरुषार्थ को, जागृत करती है। यही कारण है, कि अंत में कल्लु भी शराब छोड़ने के लिए तैयार होता है। मालिक से विद्रोह करने के लिए, अन्य मजदूरों को संघटित करता है। मजदूरी बढ़ाने के लिए संघर्ष नायक भी वह बन जाता है। पत्नी की इज्जत की रक्षा के लिए वह मुकादम पद छोड़कर मालिक से लोहा लेने के लिए पत्नी के साथ सक्रीय बनता है। "पोस्टर" के द्वारा अपना संघर्ष जारी रखता है।

अत: पति पत्नी का यह संघर्ष विपरित परिस्थितियों के कारण, असामंजस्य की स्थिति के कारण, आर्थिक खींचातानी के कारण निर्माण होता है, किंतु वास्तवता से सजग होने पर, अधिकार चेतना जागृत होने पर वे दोनों ही अंतर्मुख बनकर एक होकर विषम परिस्थितियों

से जूझने के लिए, मर मिटने के लिए भी तैयार होते हैं। पति-पत्नी का यह संघर्ष नाटक में अत्यंत संक्षिप्तता से प्रस्तुत होता है, किंतु वह नायक-नायिका के व्यक्तित्व को विकसित करता है। उनके व्यक्तित्व को उँचा उठाने में उन्हें क्रियाशील बनाने में सक्रीय रहा है। यह संघर्ष वैसे स्थूल ही है, किंतु नाटक के कथाविकास की दृष्टि से तथा पात्रों के चरित्र निर्माण की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण रहा है।

३.२.८ मानसिक संघर्ष :

मनुष्य का मन संघर्ष का केंद्रस्थल है। मनुष्य में हर स्थिति में संघर्ष की चेतना बनी रहती है। यह संघर्ष बाह्य एवं आंतरिक दोनों ही प्रकार का होता है। बाह्य संघर्ष की तुलना में आंतरिक संघर्ष श्रेष्ठ होता है और जिस साहित्य में आंतरिक संघर्ष प्रधान रहता है, वह साहित्य कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटी का माना जाता है, क्योंकि बाह्य संघर्ष दृश्य रहता है, अत: वह स्थूल रहता है, जिसका चित्रण सहजसाध्य रहता है , किंतु आंतरिक संघर्ष व्यक्ति के मन में भीतर ही भीतर चलता है। अत: वह अदृश्य रहता है। यह संघर्ष व्यक्ति के मन की अतल गहराईयों को खोल देता है। अत: इस संघर्ष की अभिव्यक्ति नाटककार पात्रों के अभिनय, क्रियाकलाप आदि के द्वारा करता है, जो बहुत ही कठिण रहा करती है।

एक ही व्यक्ति के मन में परस्पर भिन्न विचारधाराओं में विरोधी भावनाओं में जब अंतर्द्वंद चलता है, और अनिर्णय कि स्थिति पैदा होती है, आंतरिक संघर्ष की निर्मिति होती है। जितनी मात्रा में भावनिक उमड़, वैचारिक आंदोलन प्रबल रहता है, आंतरिक संघर्ष उतना ही तीव्र बनता है। यह संघर्ष व्यक्ति के व्यक्तित्व को ऊँचा उठा देता है। नाटक में इस संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति में नाटककार की मौलिक विशेषता एवं कुशलता रहती है।

"पोस्टर" नाटक में मानसिक संघर्ष वैसे कम रूप में आता है। फिर भी उसकी अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से हुअी है, जो नाटक को कथावस्तु को गतिशील बनाती हुअी, उसे चरमसीमा की ओर ले जाती है, नाटकीय प्रभावान्विति में सहायक बन जाती है। यह मानसिक संघर्ष पात्रों के भावनिक आंदोलन को सक्षमता से एवं सजीवता से साकार करता है। इस दृष्टि से चैती, कल्लु एवं वन-अधिकारी का मानसिक संघर्ष यहाँ दृष्टव्य है।

चैती, जो इस नाटक की नायिका है, संघर्षशील पात्र के रूप में उभरती है। वह आदिवासी नारीशोषण का प्रतिनिधी पात्र बनकर नाटक में सक्रीय रही है। सत्ताधारी शोषकवर्ग के शोषणतंत्र से पीड़ित भीतर-ही-भीतर घुटती हुअी नारी के अंतर्द्वन्द्व को चैती अभिव्यक्त करती है। शोषक वर्ग की तानाशाही में आदिवासी नारीजीवन युग-युग से दम तोड रहा है। उनका श्रमशोषण, आर्थिक शोषण तो होता ही है, किंतु उनके नारित्व को भी बुरी तरह से लूट लिया जाता है। शोषक वर्ग की भोगदृष्टि उनके नारीत्व को निगल जाती है। सत्ताधारी वर्ग की खुशामद करने के लिए शोषकवर्ग इसी आदिवासी युवा नारीत्व को उनके भोग के लिए लगा देता है। न जाने यह कब से होता आया है, और आज भी हो रहा है। आज भी बिहार के आदिवासी प्रदेश की वास्तव स्थिति इस तथ्य को उजागर करती है।

आदिवासी प्रदेश के सर्वे-सर्वा पटेल आदिवासी युवा नारी चैती के प्रति भोगवादी दृष्टि रखता है। अपनी वासना बुझाने के लिए तथा वन अधिकारियों को खुश रखने के लिए वह चैती की ड्यूटी हवेली में लगा देता है और कल्लु को मुकादम पद का लालच दिखाता है। यह आदिवासी परिवेश की पुरानी परम्परा है। जब किसी की ड्यूटी हवेली पर लग गयी मानो उसे धन एवं गहनों के लालच में लूट लिया गया,

उसका निरीह नारीत्व खरीदा गया। चैती जब इस वास्तविकता का अर्थ समझ जाती है, तो उसका खून खौल उठता है। अपने ऊपर होनेवाले अन्याय-अत्याचार को, शरीर-शोषण को लेकर उसके मन में अंतर्द्वन्द्व चलता रहता है। वह हर हालत में अपना नारित्व सुरक्षित रखने का प्रयास करती है। प्रारंभ में कल्लु भी मुकादम पद के लालच में पटेल की भोग दृष्टि को सही अर्थ में समझ नहीं पाता, तो चैती उसे सचेत करती है। पटेल की गुलामी के बजाय वह उसे मुकादम पद छोड़ने की, यहाँ तक की गाँव तक छोड़ देने की प्रार्थना करती है। अपने भविष्य निर्वाह के लिए अपने भायके में खदान में मजदूरी कर गुजर करने की योजना बना लेती है, किंतु थोडीसी सुविधा एवं कपड़े-गहनों के लालच में अपने शरीर का सौदा करना उसे हरगिज स्विकार्य नहीं है। वह पटेल की इस वासनांधता का कड़ा विरोध करती है। इस संदर्भ में वह अपने पति से स्पष्टत: कहती भी है - " देख कल्लु ..... चाहे जो हो जाए, मैं हवेली में नहीं जाँऊगी ..... अगर उसेने कोसीस की तो कुल्हाड़ी से काटके दस टुकडे कर दूँगी उसके ....."[१८] चैती का यह क्रोध, निर्भिकता, स्वातंत्र्यप्रियता एवं स्वाभिमानी भारतीय नारी के स्वरूप को उजागर करता हैं। चैती का यह मानसिक संघर्ष उस वक्त और भी बढ़ जाता है, जब अन्य मजदूर कल्लु एवं चैती का साथ नहीं देते, बल्कि वे इसे उनका निजी मामला कहकर पीछे हट जाते हैं। अत: कल्लु और चैती को वैयक्तिक स्तर पर ही इस संकट का सामना करना पडता है।

यहाँ चैती का संघर्ष उस आदिवासी युवा नारी का आत्मिक संघर्ष है, जो हर स्थिति में अपना स्वत्व सुरक्षित रखना चाहती है। उसके लिए वह बड़ी से बड़ी सत्ता का भी विरोध करती है। अंत में उसकी संघर्ष चेतना को सत्ता एवं दबावनीति के तले दबा दिया जाता है। चैती को मजबुरन हवेली की नौकरी स्वीकार करनी पडती है,

किंतु उसकी संघर्ष चेतना को, उसके प्रयास को असफल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसीकी संघर्षचेतना, से कल्लु, मजदूर-तीन तथा अन्य मजदूर जागृत होते हैं। पटेल के शोषणतंत्र से लोहा लेने की शक्ति रखते हैं। यहाँ चैती का संघर्ष स्वाभाविक रूप से ही विकसित होता है।

चैती के मानसिक संघर्ष के साथ ही आदिवासी कथानायक कल्लु का भी मानसिक संघर्ष नाटक में दृष्टव्य है। चैती के मानसिक संघर्ष की तुलना में कल्लु का मानसिक संघर्ष संक्षिप्त रूप से आता है। कल्लु आर्थिक माँग की खातिर पोस्टर के द्वारा मूक क्रांति करता है। पूरे मजदूर वर्ग का नेतृत्व करता है। उसके प्रयत्न से शोषकवर्ग को अपनी हार मानकर मजदूरों की मजदूरी पचास पैसे से बढ़ानी पड़ती है। अत: यह मजदूर वर्ग का संघर्ष बीच में ही तोड़ने के लिए, उसे जड़ से ही उखाड़ फेंकने के लिए पटेल एक नयी चाल चलता है। वह इस संघनायक को ही सत्तासुविधा के प्रलोभन से खरीदने की कोशिश करता है। वह कल्लु को मुकादम पद का लालच दिखाकर, चैती की ड्यूटी हवेलि पर लगाना चाहता है, क्योंकि उसकी बुरी नजर चैती पर है। इसप्रकार वह मजदूरों की संघर्षचेतना ही मिटाना चाहता है। जब गुरूजीद्वारा वह इस वास्तविकता का अर्थ समझाता है, तो उसमें पटेल की शोषणनीति के खिलाफ संघर्ष की चेतना तीव्र बनती है।

पटेल सत्ता-सुविधा के बलपर कल्लु के स्वत्व को एवं चैती के नारित्व को दास बनाकर एक नये शोषणतंत्र को अपनाता है, तो मजदूर-३ कल्लु को इस स्थिति से सचेत करते हुए कहता है, "इसमें समझाना क्या है, कल्लु ? सुखलाल भी तो इसीतरह मुकादम बना था। उसकी औरत भी इसीतरह हवेली गयी थी ..... पहले क्या था वह ..... मगर अब क्या हो गया है। भैया, यह दुनिया की रीत है।"[१९] उस वास्ते कल्लु का यह कथन, कि "मेरी बराबरी उस सुखलाल से करता है।"[२०]

उसकी स्वाभिमानी वृत्ति एवं स्वातंत्र्यप्रियता को स्पष्ट करता है। हर हालत में कल्लु को पटेल की लाचारी कतई पसंद नहीं है। धन एवं सुविधा के बदले में वह अपने स्वत्व को एवं अपनी पत्नी को बेचना नहीं चाहता। उसके मन में पटेल की शोषणनीति के खिलाफ अंतर्द्वन्द्व चलता रहता है। सत्ता-सुविधा से अधिक उसे अपना ईमान पत्नी की इज्जत प्रिय है, जिसकी रक्षा के लिए वह पटेल जैसी बड़ी ताकद से भी लोहा लेने के लिए सक्रीय बन जाता है।

पटेल की वासनांधता का विरोध करते हुए वह चैती से साफ कह देता है, "..... तू नहीं जायेगी हवेली ..... देखता हूँ कौन ले जाता है तुझको।"[२१] समय-समय पर चैती की प्रेरणा एवं सहयोग से यहाँ कल्लु का आंतरिक संघर्ष और भी तेज हो जाता है। वह गुरूजी से पोस्टर बनवाकर उस पर साफ लिख देता है कि चैती हवेली नहीं जायेगी। पटेल की इस शोषणनीति से वह गुस्सैल क्रुद्ध बन जाता है। मजदूर-३ का साथ भी उसे मिल जाता है। इसप्रकार कल्लु अपना संघर्ष जारी रखता है। नाटक के अंत में भी, उसके साथ लड़ाई में वह पटेल को लोहे से पिटवाता है। यहाँ उसका संघर्ष तीव्र हो जाता है। अपनी पत्नी की इज्जत पर हाथ डालनेवाले नराधम को वह मारता है। अपनी बेइज्जती का बदला लेता है। चैती के शारीरशोषण का विरोध करना, "पोस्टर" के द्वारा अपनी मूक क्रांति जारी रखना, और इस संघर्ष में अंत में पटेल की पिटाई करना ये सारी घटनाएं उसकी मानसिक संघर्ष चेतना को प्रकाशित करती है। वैसे चैती के मानसिक संघर्ष की तुलना में कल्लु का मानसिक संघर्ष कम रूप में आता है, किंतु वह नाटकीय कथाविकास में तथा चैती की चरित्र-विशेषताओं के उद्घाटन में सफल रहा है। इस दृष्टि से यहाँ कल्लु का मानसिक संघर्ष संक्षिप्त होते हुए भी स्वाभाविक एवं प्रभावी बन गया है।

चैती एवं कल्लु के मानसिक संघर्ष के साथ ही कुछ मात्रा में फारेस्ट अफसर का भी मानसिक संघर्ष आता है। यह संघर्ष इतना तीव्र नहीं है, जितना चैती का रहा है, बल्कि वन अधिकारी का यह मानसिक संघर्ष उनके असफल वैवाहिक जीवन को लेकर निर्माण हुआ है, जिस पर नाटककारने संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला है।

फारेस्ट अफसर सभी सुविधाओं के बीच भी अभावग्रस्त जिंदगी जी रहा है। जब पटेल के साथ उनका वार्तालाप चलता है, तो अनायास ही गज़ल सुनते हुए उसके मन की वेदना उभरकर उसके होठों तक आ जाती है। वह पटेल से अपनी व्यथा बताते हुए कहता है कि उनकी पत्नी पिछले दस सालों से किसी असाध्य बीमारी से ग्रस्त है। अत: पत्नी से उसे सच्चा वैवाहिक सुख नहीं मिला। उसका वैवाहिक जीवन असफल एवं निराशाग्रस्त रहा है। यही कारण है कि सभी भौतिक सुख-सुविधाओं के बीच भी, पत्नी के होते हुए भी वह सच्चे सांसारिक सुख से वंचित रहे। वह कहता है, कि " ..... मेरी मैरीड लाइफ पर पानी फिर गया है। वह है भी, नहीं भी। वैसे स्वभाव की अच्छी है। लेकिन .... वाइफ सिर्फ दया और सहानुभूति दिखाने कि लिए नहीं होती ...."[२२] वह शारीर सुख के लिए लालायित है, किंतु जब तक पत्नी जिंदा है, तब तक वह कोई अन्य कदम उठाना नहीं चाहता। वह न पत्नी को छोड़ सकता है, न दूसरी शादी कर सकता है। केवल अंदर ही अंदर घुटते रहता है। अपनी भावनाओं को मारकर जीवन काटने का प्रयास करता रहता है।

फारेस्ट अफसर की यह व्यथा उसके अंतर्द्वन्द्व को साकार करती है। सुखविहीन, भावनाविहीन जिंदगी को ही उसे अपनाना पड़ता है। उसके इस अंतर्द्वन्द्व में उसकी भोगवादी दृष्टि ही दिखाई देती है। इस दृष्टि से वह स्थूल ही लगता है। इसप्रकार वन अधिकारी का मानसिक संघर्ष संक्षिप्त रूप से नाटक में उभरा हुआ है, फिर भी उससे उसकी

अन्तर्वेदना सहजता से अभिव्यक्त हुअी है।

३.२.९ निष्कर्ष :

"पोस्टर" डा.शेष का एक सामाजिक नाटक रहा है। संघर्ष नाटक का प्राणतत्व है, उसी तरह वह मानवी जीवन का भी एक अनिवार्य अंग है। संघर्ष के बिना मानवी जीवन अधूरा एवं अस्थिर रहता है, उसी तरह नाटक भी। प्रस्तुत नाटक में डा.शेषजी ने आदिवासी परिवेश के संघर्षशील जीवन को प्रस्तुत किया है। "पोस्टर" का संघर्ष यद्यपि ऊपरी तौर से वर्गीय लगता है, जिस आधार पर उसे साम्यवादी विचारधारा की प्रतिक्रिया भी कहा जा सकता है, किंतु वास्तवता तो यह है कि लेखक ने उसे किसी विचारधारा अथवा सिध्दांत प्रतिपादन के हेतु चित्रित न कर आदिवासी जीवन को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है। अनुसंधान अधिकारी की हैसियत से कार्य करते हुए मध्यप्रदेश के बस्तर तथा नारायणपूर जिले के आदिवासी समाजजीवन को, उनके संघर्ष को, लेखक ने पेश किया है। यही यथार्थता आज भी मध्यप्रदेश बिहार के आदिवासी प्रांतो का दाहक वास्तव बनी हुअी है। इस दृष्टि से प्रस्तुत नाटक का संघर्ष किसी विचारधारा की प्रतिक्रिया न होकर लेखक की यथार्थपरक मौलिक अभिव्यक्ति सिद्ध होती है।

पूँजीवादी वर्ग की शोषणनीति आदिवासी समाजजीवन को किसप्रकार तहसनहस कर देती है, जीवन से ही उखाड़ फेंक देती है, इसका वास्तव चित्र "पोस्टर" में जीवंत हो उठा है। पूँजीवादी वर्ग की इस एकाधिकार तानाशाही को आज की निष्क्रीय एवं भ्रष्ट प्रशासनव्यवस्था एवं लाचार पुलिसयंत्रणा और भी बढावा देती है। इस शोषणचक्र में निरीह आदिवासी जीवन सभी ओर से पिसता जा रहा है। अत: आदिवासी जीवन की शोषण-मुक्ति के लिए, निर्भय एवं स्वतंत्र समाज-

स्थापना के लिए संघर्ष की चेतना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है। प्रस्तुत नाटक में आदिवासी जीवन का संघर्ष वास्तव धरातल पर उजागर होता है। यद्यपि इस संघर्ष में मजदूर वर्ग की संघर्षचेतना को सत्ताधारी वर्ग की दमननीति निगल जाती है, फिर भी उनके संघर्ष को सर्वथा असफल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस परिस्थिति में जितनी मात्रा में संघर्ष की चेतना विकसित हो सकती थी, उतनी ही मात्रा में लेखक ने उसे प्रस्तुत किया है। लेखक किसी आदर्शवादी परिणाम की ओर नहीं ले जाते, बल्कि वे वास्तव तथ्य को उजागर करते हैं। इसप्रकार "पोस्टर" का संघर्ष परिस्थिति सापेक्षता में ही उजागर होता है। यही कारण है, कि प्रस्तुत नाटक में मानसिक संघर्ष बहुत ही कम मात्रा में दिखाई देता है। अधिकांशत: वह बाह्य ही है। फिर भी वह यथार्थ धरातल पर आदिवासी जीवन के दाहक वास्तव को प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक भी सचेत होकर अंतर्मुख बन जाते हैं। इस दृष्टि से "पोस्टर" नाटक का संघर्ष अधिक सफल एवं मौलिक सिद्ध होता है।

संदर्भ

१. डा. ज्ञा.का. गायकवाड - आधुनिक हिंदी नाटकों में संघर्ष तत्व-पृ.क्र. २७

२. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ९९

३. डा. सुरेशा, वीणा गौतम - राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष पृ.क्र. १६२

४. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १८०

५. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १८२

६. डा. सुनीलकुमार लवटे - नाटककार शंकर शेष - पृ.क्र. ६८ और
डा. प्रकाशा जाधव - डा.शंकर शेष का नाटक साहित्य-पृ.क्र. ९०

७. डा. मधुकर हसमनीस - प्रयोगशील नाटककार डा.शंकर शेष - पृ.क्र. ५०

८. सं.डा. विनय - "एक साथ की गाथा"-डा.शंकर शेष रचनावली-पृ.क्र. ६०

९. डां. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १५८

१०. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ८६

११. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १७०, १७१

१२. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६३

१३. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १७७

१४. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १२६

१५. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६३

१६. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६२

१७. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६४

१८. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६६

१९. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६२

२०. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६२

२१. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १६६

२२. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १०८